अज्ञान सभी रोगों का मूल है?

चंचलमल चोरड़िया
जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर...

स्वस्थ कौन?

स्वास्थ्य का मतलब है स्व में स्थित हो जाना अर्थात् अपने निज स्वरूप में आ जाना या विभाव-अवस्था से स्वभाव में आ जाना। जैसे अग्नि के संपर्क से पानी गरम हो जाता है, उबलने लगता है, परंतु जैसे ही अग्नि से उसको अलग करते हैं, धीरे-धीरे वह ठण्डा हो जाता है। शीतलता पानी का स्वभाव है, गर्मी नहीं। उसको वातावरण के अनुरूप रखने के लिए किसी बाह्य आलंबन की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार शरीर में जैसे हड्डियों का स्वभाव कठोरता है, परंतु किसी कारणवश कोई हड्डी नरम हो जाए तो रोग का कारण बन जाती है। मांसपेशियों का स्वभाव लचीलापन है। परंतु उनमें कहीं कठोरता आ जाती है, गाँठ बन जाती है तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। हृदय एवं रक्त को शरीर में अपेक्षाकृत गरम रहना चाहिए, परंतु यदि वे ठंडे हो जायें तो, मस्तिष्क तनाव मुक्त शान्त रहना चाहिए, परंतु वह उत्तेजित हो जायें तो रोग का सूचक है। शरीर का तापक्रम ९८.४ डिग्री फारहेनाइट रहना चाहिए, परंतु वह बढ़ जावे अथवा कम हो जायें। शरीर में सभी अंगों एवं उपांगों का आकार निश्चित होता है। परंतु, वैसा न हो। विकास जिस अनुपात में होना चाहिए, उस अनुपात में न हो। जैसे शरीर बेढंगा हो, शरीर में विकलांगता हो, आंखों की दृष्टि कमजोर हो, कान से कम सुनाई देता हो, मुँह से बराबर बोल न सकें, आदि शरीर की विभाव-दशाएँ हैं। अतः रोग की प्रतीक हैं। शरीर का गुण है - जो अंग और उपांग शरीर के जिस स्थान पर स्थित है, उनको वहीं स्थित रखना। हलन-चलन के बावजूद आगे पीछे न होने देना। शरीर में विकार उत्पन्न हो जाने पर उसको दूर कर पुनः अच्छा करना। यदि कोई हड्डी टूट जाए तो उसे पुनः जोड़ना। चोट लग जाने से घाव हो गया हो, तो उसको भरना तथा पुनः त्वचा का आवरण लगाना तथा रक्त बहने अथवा रक्तदान आदि से शरीर में रक्त की कमी हो गई हो तो उसकी पुनः पूर्ति करना। ये सब कार्य व गुण शरीर के स्वभाव हैं। परंतु यदि किसी कारणवश शरीर इन कार्यों को बराबर न करे तो यह उसकी विभावदशा है अर्थात् शारीरिक रोगों का प्रतीक है।

शरीर विभिन्न तंत्रों का समूह है। जैसे ज्ञानतंत्र, नाड़ीतंत्र, श्वसन, पाचन, विसर्जन, मज्जा, अस्थि, लासिका, शुद्धिकरण, प्रजननतंत्र आदि। सभी आपसी सहयोग से अपना - अपना कार्य स्वयं ही करते हैं, क्योंकि ये चेतनाशील प्राणी के लक्षण अथवा स्वभाव हैं। परंतु यदि किसी कारणवश कोई भी तंत्र शिथिल हो जाता है एवं उसके कार्य को संचालित अथवा नियंत्रित करने के लिए बाह्य सहयोग लेना पड़े तो यह शरीर की विभावदशा है अर्थात् शारीरिक रोग का सूचक है।

मन का कार्य मनन करना, चिंतन करना, संकल्प करना, विकल्प करना व इच्छाएँ करना आदि है। इस पर जब ज्ञान एवं विवेक का अंकुश रहता है तो वह शुभ में प्रवृत्ति करता है। व्यक्ति को नर से नारायण बनाता है। परंतु जब स्वछन्द होता है तो अपने लक्ष्य से भटका देता है। जब चाहा, जैसा चाहा चिंतन-मनन, इच्छा-एषणा, आवेग करने लग जाता है, जिसका परिणाम होता है क्रोध, मान, माया, लोभ, असंयम, द्वन्द्व, प्रमाद जैसी अशुभ प्रवृत्तियाँ। ये सब मानसिक रोगों का कारण हैं। इसके विपरीत क्षमा, करुणा, दया, मैत्री, सेवा, विनम्रता, सरलता, संतोष, संयम एवं शुभ प्रवृत्तियाँ मन के उचित कार्य हैं। अतः मानसिक स्वस्थता के प्रतीक हैं। अज्ञान, मिथ्यात्व, मोह आत्मा की विभावदशा है जो कर्मों के आवरण से उसको अपना भान नहीं होने देती। अतः आत्मा के रोग हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, वीतरागता शुद्धात्मा के लक्षण हैं जो आत्मा की स्वस्थता के द्योतक हैं। जैसे कोई व्यक्ति केवल झूठ बोलकर ही जीना चाहे, सत्य बोले ही नहीं तो क्या दीर्घकाल तक अपना जीवन सुचारू रूप से चला सकता है? नहीं। क्योंकि झूठ बोलना आत्मा का स्वभाव नहीं। व्यक्ति छोटा हो या बड़ा अपने स्वभाव में बिना किसी परेशानी के सदैव रह सकता है। बाह्य आलम्बनों एवं परिस्थितियों में जितना-जितना वह विभाव-अवस्था में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाएगा। शारीरिक मानसिक अथवा आत्मिक रोगी बनता जाएगा। जितना-जितना अपने स्वभाव को विकसित करेगा स्वस्थ बनता जाएगा। अपने आपको पूर्ण स्वस्थ रखने की कामना रखने वालों को इस तथ्य, सत्य का चिंतन कर अपने लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ना चाहिए।

आरोग्य एवं नीरोगता में अंतर

'नीरोग' का मतलब है। रोग उत्पन्न ही न हो और 'आरोग्य' का मतलब है। शरीर में रोगों की उपस्थिति होते हुए भी हमें उनकी पीड़ा एवं दुष्प्रभावों का अनुभव न हो। आज हमारा सारा प्रयास आरोग्य रहने तक ही सीमित हो गया है। उसमें भी हम मात्र शारीरिक रोगों को ही रोग मान रहे हैं। मानसिक एवं आत्मिक रोग जो ज्यादा खतरनाक हैं, हमें जन्म-मरण एवं विभिन्न योनियों में भटकाने वाले हैं, की तरफ ध्यान ही नहीं। शारीरिक रूप से भी नीरोग बनना असंभव सा लगता है। चाहे रोग शारीरिक हों, चाहे मानसिक अथवा आत्मिक उनका प्रभाव तो शरीर पर ही पड़ेगा। अभिव्यक्ति तो शरीर के माध्यम से ही होगी, क्योंकि मन और आत्मा अरूपी हैं। उनको इन भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता। मुख्य रूप से रोग आधि (मानसिक) व्याधि (शारीरिक) उपाधि (कर्मजन्य) के रूप में ही प्रकट होते हैं। अतः आधि, व्याधि, उपाधि का शमन करने से ही समाधि, परम शांति अथवा स्वास्थ्य अर्थात् नीरोग-अवस्था की प्राप्ति हो सकती है।

स्वास्थ्य का सम्यक् दर्शन -

सम्यग्दर्शन का सीधा-साधा सरल अर्थ होता है सही दृष्टि, सत्य दृष्टि, सही विश्वास। अर्थात् जो वस्तु जैसी है जितनी महत्त्वपूर्ण है, जितनी उपयोगी है, उसको उसके स्वरूप, गुण एवं धर्म के आधार पर जानना। सम्यक् दर्शन से स्वविवेक जागृत होता है। स्वदोषदर्शन की प्रवृत्ति विकसित होती है। वस्तुस्थिति ऐसी हो गई है कि हमारा शरीर रूपी नौकर एवं मन रूपी मुनीम आत्मा रूपी मालिक पर शासन कर रहें हैं। हमारी स्थिति उस शेर के समान हो गई है जो भेड़ियों के बीच पल कर बड़ा होने से अपनी शक्तियों का भान भूल जाता है। सम्यग्दर्शन से आत्मा और शरीर का भेदज्ञान होता है। आत्मा का साक्षात्कार होने से उसकी अनन्त शक्ति का भान होने लगता है। उसके ऊपर आए कर्मों की तरफ दृष्टि जाने लगती है। उसके शुद्धिकरण का प्रयास प्रारंभ होने लगता है। सभी चेतनशील प्राणियों में एक जैसी आत्मा के दर्शन होने लगते हैं। सत्य प्रकट होते ही पूर्वाग्रह एवं एकान्तवादी दृष्टिकोण समाप्त होने लगता है। अनेकान्तवादी दृष्टि विकसित होने लगती है। जैसे खुद को दुःख होता है वैसे ही दूसरों के दुःख का अनुभव होने लगता है।

अतः स्वयं के लाभ के लिए दूसरों को कष्ट पहुँचाने की प्रवृत्ति कम होने लगती है। सत्य को पाने के लिए उसका सारा प्रयास होने लगता है एवं अनुपयोगी कार्यों के प्रति उसमें उदासीनता आने लगती है और जीवन में समभाव बढ़ने लगता है। अर्थात् उसके जीवन में सम (समता), संवेग (सत्य को पाने की तीव्र अभिलाषा), निर्वेद (अनुपयोगी कार्यों के प्रति उपेक्षावृति), अनुकम्पा (प्राणिमात्र के प्रति दया, करुणा, परोपकार, मैत्री का भाव) तथा सत्य के प्रति आस्था हो जाती है। यही सम्यक्त्व के पाँच लक्षण हैं। उसका उद्देश्य मेरा जो सच्चा के स्थान पर सच्चा जो मेरा हो जाता है। उसका जीवन स्वर पर कल्याण के लिए ही कार्यरत रहता है।

सम्यक्दर्शी का चिकित्सा के प्रति दृष्टिकोण -

सम्यग्दर्शन होने पर व्यक्ति रोग के प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष, वर्तमान एवं भूत संबंधी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक कारणों को देखेगा, समझेगा और उन कारणओं से बचने का प्रयास करने लगेगा। फलतः रोग उत्पन्न होने की संभावनाएँ बहुत कम हो जाएँगी। जो स्वस्थ रहने के लिए अति आवश्यक है। रोग उत्पन्न हो भी गया हो तो उसके लिए दूसरों को दोष देने के बजाय स्वयं की गलतियों को ही उसका प्रमुख कारण मानेगा तथा धैर्य एवं सहनशीलता पूर्वक उसका उपचार करेगा। उपचार कराते समय क्षणिक राहत से प्रभावित नहीं होगा, दुष्प्रभावों की उपेक्षा नहीं करेगा। साधन, साध्य एवं सामग्री की पवित्रता पर विशेष ध्यान रखेगा। ऐसी दवाओं से बचेगा जिनके निर्माण एवं परीक्षण में किसी भी जीव को कष्ट पहुँचता हो। उपचार के लिए अनावश्यक हिंसा को प्रोत्साहन नहीं देगा। आशय यह है कि सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् व्यक्ति पाप के कार्यों अर्थात् अशुभ प्रवृत्तियों से यथा संभव बचने का प्रयास करता है। उसका जीवन पानी में कमल की भाँति निर्लिप्त होने लगता है। प्रत्येक कार्य को करने में उसका विवेक एवं सजगता जागृत होने लगते हैं। अनुकूल एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिकूल परिस्थितियों का उस पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। उसका प्रयास नवीन कर्मों का क्षय कर आत्मा को नर से नारायण बनाने का होता है।

पूर्वकृत कर्मों का वर्तमान जीवन से संबंध -

जन्म के साथ मृत्यु निश्चित है। पूर्वकृत पुण्यों के आधार पर हम प्राण-ऊर्जा अर्थात् श्वासों के रूप में आयुष्य का जो खजाना लेकर आते हैं प्रतिक्षण कम होता जाता है। जीवन के अंतिम समय तक उस संचित संगृहीत प्राण-ऊर्जा को संतुलित एवं नियंत्रित कैसे रखा जाए, यह स्वास्थ्य की मूलभूत आवश्यकता है। पूर्वकृत कर्मों के आधार पर ही हमें अपना स्वास्थ्य, सत्ता, साधन, संयोग अथवा वियोग मिलते हैं। अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियाँ बनती हैं। परंतु कभी कभी पूर्वकृत पुण्यों के उदय से व्यक्ति को मनचाहा रूप, सत्ता, बल, साधन एवं सफलताएँ लगातार मिलने लगती हैं। प्रतिकूल परिस्थितियाँ, वियोग, रोग यदि उत्पन्न न होते तो व्यक्ति अज्ञानवश अभिमानपूर्वक कर्म - सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। कर्मसिद्धान्त को समझने के लिए हमें चिंतन करना होगा कि वे कौन से कारण हैं जिनसे बहुत से बालक जन्म से ही विकलांग अथवा रोगग्रस्त होते हैं? कोई गरीब के घर में कोई अमीर के घर में जन्म क्यों लेते हैं? कोई बुद्धिमान तो कोई मूर्ख क्यों बने हैं? भारतीय संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र का सर्वोच्च पद प्राप्त करने का अधिकार है, परंतु चाहते हुए अथवा प्रयास करने के बावजूद भी सभी राष्ट्रपति अथवा प्रधानमंत्री क्यों नहीं बन पाते? संसार की सारी विसंगतियाँ एवं हमारे चारों तरफ का वातावरण हमें पुनर्जन्म एवं कर्मों की सत्ता के बारे में निरंतर सजग और सतर्क कर रहे हैं। अज्ञानवश उसके महत्त्व को न स्वीकारने से उसके प्रभाव से कोई बच नहीं सकता। पारस को पत्थर कहने से वह पत्थर नहीं हो जाता और पत्थर को पारस मान लेने से वह पारस नहीं बन जाता। सम्यक् दर्शन रोग के इस मूल कारण पर दृष्टि डालता है एवं कर्मों को दूर करने की प्रेरणा देता है, जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

अपनी सफलताओं का अहम् करने वालों के जैसे ही पूर्वकृत पुण्यों का क्षय हो जाता है और अशुभ कर्मों का उदय प्रारंभ होने लगता है, उनका अहम् चूर-चूर हो जाता है। अपराध के प्रथम प्रयास में न पकड़ा जाने वाला यदि अपनी सफलता पर गर्व करे तो यह उसका अज्ञान ही होगा।

रोगों के अन्य कारण एवं उपचार की सीमाएँ -

रोग होने के मुख्य कारण हमारे पूर्वकृत संचित अशुभ कर्मों का उदय, हमारी अप्राकृतिक जीवन-पद्धति, अर्थात् असंयमित, अनियमित, अनियंत्रित, अविवेकपूर्ण अपनी क्षमताओं के प्रतिकूल शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक अशुभ प्रवृत्तियाँ हैं। सम्यक् दर्शन होने के पश्चात् रोग होने पर व्यक्ति रोग का कारण अपनी गलतियों को मानेगा और धैर्य, सहनशीलता समभावपूर्वक उनको सहन कर कर्मों से हल्का होना चाहेगा। रोग की स्थिति में हाय-हाय कर, चिल्लाकर सबको परेशान कर, नवीन कर्मों का बंध नहीं करेगा। जिससे कर्मों का रोग सदैव के लिए चला जाएगा। परंतु अपरिहार्य कारणों से धैर्य एवं सहनशीलता के अभाव में अगर उपचार भी कराएगा तो इस बात का अवश्य विवेक रखेगा कि उपचार के लिए जो साधन, साध्य एवं सामग्री कार्य में ली जा रही है, वह यथासंभव पवित्र हो। यदि उपचार कर्मबंध का कारण बने तो कर्जा चुकाने के लिए ऊँची ब्याज की दर पर नया कर्जा लेने के समान होगा।

मिथ्यात्व सब पापों की जड़ -

आज अज्ञानवश अहिंसाप्रेमी उपचार के नाम पर हिंसक दवाइयों की गवेषणा तक नहीं करते। भूल का प्रायश्चित्त होता है। जानते हुए भूलें करना एवं बाद में प्रायश्चित्त लेकर दोषों से अपना शुद्धिकरण करना कहाँ तक तर्कसंगत है। वे प्रभावशाली, स्वावलंबी, अहिंसक चिकित्सा-पद्धतियों को सीखने, समझने एवं अपनाने हेतु क्यों नहीं प्रेरित होते? ऐसी पद्धतियों के प्रशिक्षण, प्रचार-प्रसार एवं शोध हेतु जनसाधारण को प्रेरणा क्यों नहीं देते? अहिंसा-प्रेमियों द्वारा सेवा के नाम पर हिंसा पर आधारित अस्पतालों के निर्माण एवं संचालन तथा प्रेरणा के पीछे उनकी दृष्टि सम्यक् नहीं कही जा सकती ?

इसी कारण मिथ्यात्व को सबसे बड़ा पाप माना जाता है। भारत भर के बच्चों के पोलियो पल्स के टीके चंद माह पहले लगाने का अभियान चला, परंतु शायद ही किसी ने यह जानने का प्रयास किया कि इनके कोई दुष्प्रभाव तो नहीं होते? ये दवाइयाँ कैसे बनती हैं? इसके निर्माण में बछड़ों के ताजे खून एवं बंदरों के गुर्दो के अवयवों की आवश्यकता होती है। अमेरिका में लगभग १ हजार परिवारों को इन इंजेक्शनों के दुष्प्रभावों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फलस्वरूप क्षतिपूर्ति के रूप में लगभग ७० लाख डालर का भुगतान करना पड़ा। लगभग ६० से ७० प्रतिशत इन दवाइयों का निर्माण करने वाली कंपनियाँ, दुष्प्रावों की क्षतिपूर्ति का भुगतान माँगने वालों के कारण बंद हो रही हैं। ऐसी दवाइयों का सेवन कर अथवा अस्पतालों का निर्माण और संचालन की प्रेरणा देकर कहीं हम बूचड़खानों को तो अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन नहीं दे रहे हैं। जब तक पाप से नहीं डरेंगे, धर्म की तरफ तीव्र गति से कैसे बढ़ पाएँगे? ठीक उसी प्रकार जब तक हिंसा से निर्मित दवा लेने का हमारा मोह भंग नहीं होगा, न तो हम पूर्ण स्वस्थ बनेंगे और न प्रभावशाली, स्वावलंबी व अहिंसात्मक चिकित्सा-पद्धतियों को सीखने, समझने एवं अपनाने का मानस ही बना पाएँगे। आज चिकित्सा के लिए जितना जानवरों पर अत्याचार हो रहा है, उतना शायद और किसी कारण से नहीं। क्योंकि जानवरों के अवयवों की जितनी ज्यादा कीमत दवाई व्यवसाय वाले दे रहे हैं, उतनी अन्य कोई व्यवसाय नहीं देते। जब दवाइयों के लिए जानवर कटेंगे तो मांसाहार को कोई रोक नहीं सकता। सम्यग्दर्शन में आस्था रखने वाले प्रत्येक साधक एवं अहिंसा-प्रेमियों को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा को प्रोत्साहन देने वाली प्रवृत्तियों से अपने को अलग रखना चाहिए।

शरीर में स्वयं स्वस्थ होने की क्षमता है -

आज हमारे सारे सोच का आधार जो प्रत्यक्ष है, जो अभी सामने है, उसके आगे-पीछे जाता ही नहीं। सही आस्था लक्ष्य - प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है। रोग कहीं बाजार में नहीं मिलता। कर्त्तव्य-बोध हेतु चिंतन करने की प्रेरणा देता है। चेतावनी देता है। परंतु सही दृष्टि न होने से हम उसको शत्रु मानते हैं। हम स्वप्न में हैं। बेहोशी में जी रहे हैं। दर्द उस बेहोशी को भंग कर हमें सावधान करता है। रोगी सुनना नहीं चाहता है। उसको दबाना चाहता है। उपचार स्वयं के पास है और खोजता है बाजार में, डाक्टर एवं दवाइयों के पास। जितना डाक्टर एवं दवा में विश्वास है, उतना अपने आप पर, अपनी छिपी क्षमताओं पर नहीं, यही तो मिथ्यात्व हैं। क्या वह कभी चिंतन करता है कि मनुष्य के अलावा अन्य चेतनाशील प्राणी अपने आपको कैसे ठीक करते हैं? क्या स्वस्थ रहने का ठेका दवा एवं डाक्टरों के संपर्क में रहने वालों ने ही ले रखा है? वस्तुतः हमें इस बात पर विश्वास करना होगा कि शरीर ही अपने आपको स्वस्थ करता है, अच्छी से अच्छी दवा और चिकित्क तो शरीर को अपना कार्य करने में सहयोग मात्र देता है। जिसका शरीर सहयोग करेगा वही स्वस्थ होगा। स्वास्थ्य के संबंध में यही दृष्टि सम्यक्दर्शन है, सच्चा ज्ञान है तथा संपूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने का मूलभूत आधार भी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org